यूजीसी और एनसीईआरटी का हिन्दू राष्ट्र शैक्षणिक कार्यक्रम

राम पुनियानी

भाजपा सरकार केंद्र में अपनी सत्ता की दूसरी पारी के अंत की ओर है. करीब दस साल की इस अवधि में सरकार ने देश के लगभग सभी संस्थानों और संस्थाओं की दशा और दिशा में जो बदलाव किये हैं, वे सबके सामने हैं. ईडी, आयकर विभाग और सीबीआई ने विपक्षी पार्टियों के खिलाफ वह सब कुछ किया, जो वे कर सकती थीं. कई मौकों पर चुनाव आयोग की भूमिका भी निष्पक्ष नहीं रही है. इस बीच, यूजीसी और एनसीईआरटी शिक्षा प्रणाली और पाठ्यक्रमों में सत्ताधारी दल को सुहाने वाले परिवर्तन करने में व्यस्त रही हैं.

नयी शिक्षा नीति (एनईपी) हमारी शिक्षा व्यवस्था के ढांचे और स्वरुप में आमूलचूल परिवर्तन लाने वाली है. सरकार द्वारा नियमित रूप से ऐसे निर्देश जारी किये जा रहे हैं जिनसे विद्यार्थियों के मनो-मस्तिष्क में हिन्दू राष्ट्रवादी विचार और सिद्धांत बिठाये जा सकें. सरकार ने सबसे पहले विद्यार्थियों के आंदोलनों और उनके प्रतिरोध को कमज़ोर करने और उनमें भागीदारी करने वालों को डराने-धमकाने का अभियान शुरू किया.

इन आंदोलनों के नेताओं पर राष्ट्रद्रोही का लेबल चस्पा कर दिया गया. तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति ईरानी ने प्रस्तावित किया कि प्रत्येक केन्द्रीय विश्वविद्यालय के प्रांगण में एक बहुत ऊंचे खम्बे पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया जाए. यह भी प्रस्तावित किया गया कि जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय (जेएनयू) के कैंपस में सेना का एक टैंक स्थापित किया जाए. वह इसलिए क्योंकि वहां के विद्यार्थी ऐसे मसले उठा रहे थे जो सरकार को पसंद नहीं थे.

हाल में इसी तर्ज पर कई निर्देश / आदेश जारी किये गए हैं. इनमें से एक यह है कि आरएसएस के प्रचारक और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (एबीवीपी) के संस्थापक दत्ताजी दिदोलकर की जन्म शताब्दी को मनाने के लिए एक साल तक चलने वाले आयोजनों में विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए. एक हिन्दू राष्ट्रवादी को राष्ट्रनायक का दर्जा देने का इस प्रयास का फोकस महाराष्ट्र के कॉलेजों पर है. क्या हिन्दू राष्ट्रवादी नेताओं को हीरो बनाने का यूजीसी का यह प्रयास उचित है?

क्या हमें उन नायकों को याद नहीं करना चाहिए जो भारतीय राष्ट्रवाद के हामी थे और जिन्होंने ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार के खिलाफ संग्राम का नेतृत्व किया था? आरएसएस से जुड़े दिदोलकर न तो स्वाधीनता संग्राम का हिस्सा थे और ना ही वे भारतीय संविधान के मूल्यों में आस्था रखते थे.

यूजीसी ने एक और सर्कुलर जारी कर कहा है कि कॉलेजों में 'सेल्फी पॉइंट' बनाए जाने चाहिए जिनकी पृष्ठभूमि में प्रधानमंत्री मोदी का चित्र हो. कहने की ज़रुरत नहीं कि यह 2024 के आमचुनाव की तैयारी है. किसी भी प्रजातान्त्रिक देश में ऐसा नहीं होना चाहिए. क्या सरकार को किसी भी एक पार्टी के शीर्ष नेता का प्रचार करना चाहिए? क्या यह प्रजातान्त्रिक मानकों का उल्लंघन नहीं है? प्रजातान्त्रिक और संवैधानिक मूल्यों का इस तरह का खुल्लमखुल्ला मखौल क्या सरकार द्वारा अपनी शक्तियों के घोर दुरुपयोग के श्रेणी में नहीं आता?

इससे भी एक कदम आगे बढ़कर, यह निर्देश जारी किया गया है कि कक्षा सात से लेकर कक्षा बारह तक के विद्यार्थियों को इतिहास के पाठ्यक्रम के भाग के रूप में 'रामायण' और 'महाभारत' पढाया जाना चाहिए (टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 22 नवम्बर, 2023). एनसीआरटी के एक्सपर्ट पैनल के अनुसार इससे देश के लोगों में देशभक्ति और स्वाभिमान के भाव जागृत होंगे और वे अपने देश पर गर्व करना सीखेंगे! भारत के ये दो महान महाकाव्य निश्चित तौर पर हमारे पौराणिक साहित्य का हिस्सा हैं. वे उस समय के सामाजिक मूल्यों और मानकों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिस समय वे लिखे गए थे. हम इन महाकाव्यों से उस समय के समाज के बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं.

रामायण भारत में ही नहीं वरन श्रीलंका, थाईलैंड, बाली और सुमात्रा सहित एशिया के कई देशों में अत्यंत लोकप्रिय हैं. रामायण के कई अलग-अलग संस्करण हैं. रामायण के मूल लेखक वाल्मीकि थे. गोस्वामी तुलसीदास ने जनभाषा अवधी में उसका अनुवाद कर उसे आम जनता तक पहुँचाया. सोलहवीं सदी से रामायण उत्तर भारत की जन संस्कृति का हिस्सा बनी हुई है. भगवान राम की वह कथा जो हिन्दू राष्ट्रवादियों को प्रिय है, इस कथा के कई अलग-अलग पाठों में से एक है. पौला रिचमेन की पुस्तक 'मेनी रामायन्स' (ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), भगवान राम की कहानी के अलग-अलग संस्करणों के बारे में बताती है. इसी तर्ज पर ए.के. रामानुजन ने एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था "थ्री हंड्रेड रामायंस- फाइव एग्जामपिल्स एंड थ्री थॉट्स ऑन ट्रांसलेशन". यह अत्यंत अर्थपूर्ण लेख दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का हिस्सा था. मगर बाद में एबीवीपी के विरोध के कारण इसे हटा दिया गया.

हिन्दू राष्ट्रवादी रामकथा के एक विशिष्ट संस्करण को बढ़ावा देना चाहते हैं. रामानुजन बताते हैं कि इस कथा के कई स्वरुप है - जैन और बौद्ध स्वरुप हैं, और महिलाओं का संस्करण भी है, जिसकी लेखिका आंध्रप्रदेश की रंगनायकम्मा है. आदिवासियों की अपनी रामकथा है. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक "हिन्दू धर्म की पहेलियाँ" में हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया है कि राम ने शम्बूक की केवल इसलिए हत्या कर दी थी क्योंकि वह शूद्र होते हुए भी तपस्या कर रहा था. इसी तरह, राम ने छुपकर और पीछे से वार कर बाली को मार दिया था. बाली कुछ पिछड़ी जातियों ही श्रद्धा के पात्र हैं. कहा जाता है "इडा पीडा जावो, बळीचे राज्य येवो" (हमारे दुःख और तकलीफें ख़त्म हों और बाली का राज फिर से कायम हो). अम्बेडकर राम की इसलिए भी कड़े शब्दों में निंदा करते हैं क्योंकि राम ने मात्र इसलिए सीता को जंगल में छोड़ दिया था क्योंकि उन्हें अपनी पप्रतिशती के चरित्र पर संदेह था. पेरियार भी द्रविड़ों पर आर्य संस्कृति लादने के लिए राम की आलोचना करते हैं. ठीक-ठीक क्या हुआ था यह साफ़ नहीं है मगर यह महाकाव्य हमें उस काल के बारे में कई महत्वपूर्णब बातें बताता है.

उसी तरह महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित विश्व की सबसे लम्बी कविता 'महाभारत' भी हमें उस युग में झाँकने का मौका देती हैं. ये दोनों ग्रन्थ ज्ञान के स्त्रोत हैं. मगर उन्हें इतिहास के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल करना एक अलग मसला है, जिसका सम्बन्ध हिन्दू राष्ट्रवाद से ज्यादा और विद्यार्थियों को इतिहास के सच से परिचित करवाना कम है.

यह भी कहा गया है कि पाठ्यपुस्तकों में इंडिया की जगह भारत शब्द का इस्तेमाल किया जाए. ऐसा बताया जा रहा है कि चूँकि हमारे देश को इंडिया नाम अंग्रेजों ने दिया था अतः वह गुलामी का प्रतीक है. इस तथ्य को जानबूझकर छुपाया जा रहा है कि हमारे देश के लिए इंडिया से मिलते-जुलते शब्दों का प्रयोग अंग्रेजों के भारत आने से बहुत पहले से हो रहा है. ईसा पूर्व 303 में मेगस्थनीज ने इस देश को इंडिका बताया था.

सिन्धु नदी के नाम से जुड़े हुए शब्द भी लम्बे समय से इस्तेमाल हो रहे हैं. हमारे संविधान में प्रयुक्त वाक्यांश "भारत देट इज़ इंडिया" का कोई जवाब नहीं है. मगर हिन्दू राष्ट्रवादी एजेंडा के चलते 'इंडिया' शब्द उन्हें असहज करता है.

वे भारत के इतिहास को नए सिरे से कालखंडों में विभाजित करना चाहते हैं. इतिहास के सबसे पुराने कालखंड, जिसे अंग्रेज़ हिन्दूकाल कहते हैं, को वे 'क्लासिक' (श्रेष्ठ या उत्कृष्ट) काल कहना चाहते हैं. उद्देश्य है इस कालखंड में प्रचलित मूल्यों को हमारे समाज के लिए आदर्श निरुपित करना. ये मूल्य, जो 'मनुस्मृति' में वर्णित हैं, वही हैं जिनके विरुद्ध अम्बेडकर ने विद्रोह का झंडा उठाया था और 'मनुस्मृति' का दहन किया था.

आज यूजीसी और एनसीईआरटी का मार्गदर्शक केवल और केवल हिन्दू राष्ट्रवादी एजेंडा है. भारतीय संविधान के मूल्यों से उन्हें कोई लेनादेना नहीं है. (अंग्रेजी से रूपांतरण अमरीश हरदेनिया; लेखक आईआईटी मुंबई में पढ़ाते थे और सन 2007 के नेशनल कम्यूनल हार्मोनी एवार्ड से सम्मानित हैं)

संघी-भाजपायी, जो आज एक ही सांस में आम्बेडकर और गीता दोनों की बात कर रहे हैं, को गीता पर आम्बेडकर के विचार जानने चाहिए

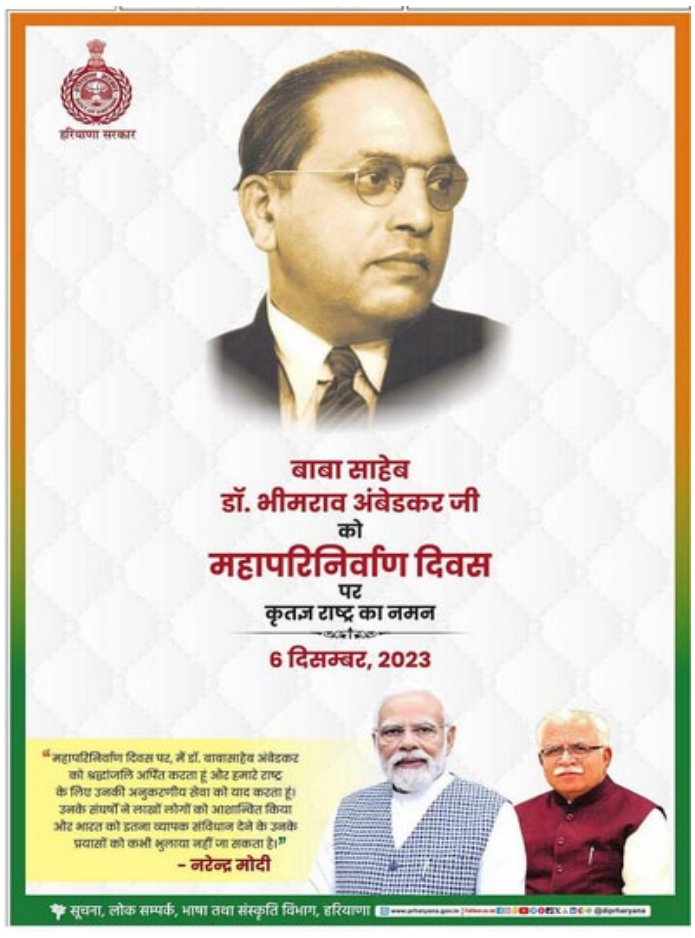

"गीता मे जिन सिद्धांतों की पुष्टि की गई है, वे प्रतिक्रांति के सिद्धांत हैं, जो प्रतिक्रांति की बाइबिल अर्थात् जैमिनी कृत पूर्वमीमांसा में वर्णित हैं।

"भगवद्गीता में प्रतिक्रांति के सिद्धांतों की पुष्टि करना क्यों आवश्यक समझा गया? मैं सोचता हूं कि इसका उत्तर सरल है। यह इसलिए किया गया, जिससे इन सिद्धांतों की बौद्ध धर्म के जबरदस्त प्रभाव से रक्षा की जा सके और यही कारण है कि भगवद्गीता की रचना की गई। बुद्ध ने अहिंसा का उपदेश दिया। उन्होंने अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया, अपितु ब्राह्मणों को छोड़कर अधिकांश लोगों ने अहिंसा को जीवन-शैली के रूप में स्वीकार भी कर लिया था। उनके मन में हिंसा के प्रति घृणा पैदा हो चुकी थी। बुद्ध ने चातुर्वर्ण्य के विरुद्ध उपदेश दिए। उन्होंने चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत का खंडन करने के लिए बड़ी कटु उपमाएं दीं। चातुर्वर्ण्य का ढांचा चरमरा गया। चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था उलट-पुलट थी। शूद्र और महिलाएं संन्यासी हो सकते थे, ये ऐसी प्रतिष्ठा थी, जिससे प्रतिक्रांति ने उन्हें वंचित कर दिया। बुद्ध ने कर्मकांड और यज्ञ कर्म की भर्त्सना की। उन्होंने इस आधार पर भी उनकी भर्त्सना की कि इन कर्मों के पीछे अपनी स्वार्थ-सिद्धि की भावना छिपी हुई थी। इस आक्रमण के विरुद्ध प्रतिक्रांतिवादियों का क्या उत्तर था? केवल यही कि ये बातें वेदों के आदेश हैं, वेद भ्रमातीत हैं, अतः इन सिद्धांतों के बारे में शंका नहीं की जानी चाहिए।

"बौद्ध-काल में, जो भारत का सबसे अधिक प्रबुद्ध और तर्कसम्मत युग था, ऐसे सिद्धांतों के लिए कोई स्थान नहीं था, जो अविवेक, दुराग्रह, तर्कहीन और अस्थिर धारणाओं पर आश्रित हों।"